इकाई 35 मुगल साम्राज्य का पतन

इकाई की रूपरेखा

35.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य :

- आपको मुगल साम्राज्य के पतन से संबंधित प्रश्न से समग्र रूप में परिचित कराना है।
- मुगल साम्राज्य के पतन के विषय में मध्यकालीन भारत के विशेषज्ञों के विभिन्न दृष्टिकोणों के विषय में भी आप जान सकेंगे।

35.1 प्रस्तावना

लगभग तीन शताब्दियों तक भारत के काफी बड़े भूभाग पर मुगल साम्राज्य का वर्चस्व बना रहा, पर अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इसकी शक्ति और प्रतिष्ठा में तेजी के साथ गिरावट आई। केवल साम्राज्य की राजनैतिक सीमाएँ ही कम नहीं हुई बल्कि अकबर और शाहजहाँ द्वारा परिश्रमपूर्वक खड़ी की गई पूरी प्रशासनिक संरचना भी चरमरा गई। मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही साम्राज्य के सभी भागों में स्वतंत्र राज्यों का उदय हो गया।

मुगल साम्राज्य के पतन और क्षेत्रीय राज्यों के उदय की प्रक्रिया को लेकर इतिहासकारों में खूब बहस चली है। मुगल इतिहास के किसी अन्य पक्ष के मुकाबले इस मुद्दे पर विद्वानों के बीच सबसे ज्यादा मतभेद हैं। मुगल साम्राज्य के पतन संबंधी ऐतिहासिक दृष्टिकोण को दो मुख्य हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है। पहला, मुगल केंद्रित दृष्टिकोण,.इसके तहत विद्वान मुगल साम्राज्य के पतन का कारण स्वयं साम्राज्य की संरचना और कार्यपद्धति में ढूंढते हैं। दूसरे दृष्टिकोण को क्षेत्र-केंद्रित दृष्टिकोण कह सकते हैं जिसके तहत साम्राज्य के पतन के कारणों को क्षेत्रीय समस्याओं और साम्राज्य के विभिन्न भागों में फैली अव्यवस्थाओं में ढूंढा जाता है।

35.2 साम्राज्य-केंद्रित दृष्टिकोण

मुगल साम्राज्य के पतन की साम्राज्य केंद्रित व्याख्या का विकास विभिन्न चरणों में हुआ है। आरंभ में विकसित सिद्धांतों में शासकों के व्यक्तित्व और उनकी नीतियों को जिम्मेदार ठहराया गया। विलियम इरविन और जदुनाथ सरकार ने इस काल का पहला विस्तृत इतिहास लिखा (डब्लू. इरविन, **द लैटर मुगल्स,** पुनप्रकाशन, नई दिल्ली 1971, जदुनाथ सरकार, **द फॉल ऑफ मुगल अम्पायर,** कलकत्ता, 1938, **हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, I-V**, कलकत्ता 1912, 1916, 1919 और 1924)। उन्होंने मुगल शासकों और उनके कुलीनों के चरित्र की गिरावट को मुगल साम्राज्य के पतन का जिम्मेवार ठहराया। सरकार ने इस काल के कानून और व्यवस्था का भी विश्लेषण किया है। इसके लिए उन्होंने औरंगजेब को प्रमुख रूप से दोषी माना है। उनके अनुसार औरंगजेब एक कट्टर धार्मिक व्यक्ति था। उसने धर्म के आधार पर कुलीनों और अधिकारियों के साथ भेदभाव अपनाया। इस नीति के कारण कुलीनों में गहरा असंतोष फैल गया। उनका कहना है कि औरंगजेब के उत्तराधिकारी और उनके कुलीन अपने पूर्वजों की छाया मात्र थे और इस प्रकार वे औरंगजेब के द्वारा की गई गलतियों को सुधारने में असक्षम थे।

35.2.1 जागीरदारी संकट

1959 में सतीश चन्द्र की पुस्तक "**पार्टिज एंड पॉलिटिक्स एट द मुगल कोर्ट, 1707-40,** 1959 दिल्ली, 1982, (तीसरा संस्करण)" का प्रकाशन हुआ। इसमें पहली बार मुगल साम्राज्य की संरचना के अध्ययन का गंभीर प्रयास किया गया। साम्राज्य की प्रकृति और इसके पतन को समझने के लिए इसकी कार्यपद्धति और इसकी योजनाओं का परीक्षण किया गया। सतीश चन्द्र ने साम्राज्य की कुछ प्रमुख संस्थाओं का अध्ययन किया। उन्होंने मुख्य रूप से **मनसबदारी** और **जागीरदारी** व्यवस्था की छानबीन की। मुगल साम्राज्य में कुलीन मुख्य राज्य अधिकारी थे। मुगल पदानुक्रम व्यवस्था में उनके स्थान के अनुसार उन्हें पदवी दी जाती थी। इन पदवियों को मनसब कहते थे। **मनसब** प्राप्तकर्ताओं को **मनसबदार** कहा जाता था, उन्हें भूराजस्व (**जागीर**) के माध्यम से वेतन दिया जाता था। अन्य जिम्मेदारियों के अलावा मनसबदारों को एक फौज भी रखनी पड़ती थी। सैनिकों के वेतन की व्यवस्था और फौज का रखरखाव इस **जागीर** की आमदनी से ही होता था। ये सैनिक **मनसबदार** की ताकत के आधार थे और उसे भूराजस्व वसूल करने में भी मदद करते थे। राजस्व की उपलब्धता निर्धारित करना और मुगलों द्वारा उसे वसूल करना इस व्यवस्था के सुचारु रूप से चलाने के लिए अपरिहार्य थे। सतीश चन्द्र के अनुसार औरंगजेब के शासन के अंतिम वर्षों में मुगल प्रशासन **मनसबदार-जागीरदार** व्यवस्था को बनाए रखने में असफल सिद्ध हुआ। जैसे ही यह व्यवस्था अव्यवस्थित होने लगी वैसे ही साम्राज्य का अंत अवश्यंभावी हो गया।

अतहर अली ने 1966 ई. में अठारहवीं शताब्दी के अंत में कुलीन और उनकी राजनीति पर एक पुस्तक लिखी (एम. अतहर अली, **द मुगल नोबिलिटी अंडर औरंगजेब,** बम्बई, 1966, पुन: प्रकाशन, 1970)। इस पुस्तक में दक्खन राज्यों के अधिग्रहण, मुगल कुलीन वर्ग में मराठों और दक्खनियों के समावेश और जागीरों में आई कमी जैसी समस्याओं का विशेष रूप से अध्ययन किया गया है। अतहर अली के अनुसार दक्खन और मराठा राज्य क्षेत्रों में इस साम्राज्य के विस्तार के कारण कुलीनों की संख्या तेजी से बढ़ी और इससे जागीर व्यवस्था की कार्य पद्धति में संकट उत्पन्न हो गया। दक्षिण के कुलीनों के समावेश के कारण जागीरों की कमी पड़ने लगी और अच्छी जागीरें प्राप्त करने के लिए कुलीनों में होड़ लग गई। इससे बहुत हद तक जागीरदारी पर आधारित राजनैतिक संरचना चरमराने लगी।

1969 में प्रकाशित अपने एक महत्वपूर्ण आलेख में प्रो. एस. नुरूल हसन ने बताया कि मुगल शासन के तहत कृषि संबंधों में ऊपर से नीचे तक पिरामिड की शक्ल में एक प्राधिकारी संरचना का विकास हुआ। इस संरचना के तहत विभिन्न प्रकार के अधिकार एक दूसरे के ऊपर अध्यारोपित किए गए। इसके परिणामस्वरूप राज्य की राजस्व मांग का सबसे अधिक बोझ किसानों पर पड़ा। अठारहवीं शताब्दी में मुगल सत्ता के पतन के साथ **जागीरों** पर दबाव बढ़ने लगा और कृषि व्यवस्था पर संकट छा गया।

नुरूल हसन के अनुसार एक वर्ग के रूप में जमींदार राज्य के प्रति काफी निष्ठावान थे। पर मुगल साम्राज्य में कृषि व्यवस्था का विकास इस रूप में हुआ कि उनके और राज्य के बीच और उनके अपने बीच के संघर्षों को नियंत्रित नहीं किया जा सका। इससे अक्सर कानून और व्यवस्था की समस्या पैदा हुई और राज्य की शक्ति में भी ह्रास हुआ। औरंगजेब की मृत्यु और साम्राज्यी शक्ति के कमजोर होने के बाद यह संतुलन बिगड़ गया। इस स्थिति में जमींदारों को एक ऐसा वर्ग ही नियंत्रित कर सकता था जो जमींदारों की सहायता पर निर्भर नहीं था। इस समय तक ऐसे किसी समुदाय का उदय नहीं हो पाया था अत: कृषीय संबंध भी नहीं बदल सके। ऐसी स्थिति में व्यवस्था का पतन अवश्यंभावी था।

एस. नुरूल हसन, "जमींदार अंडर द मुगलस" **लैंड कन्ट्रोल एंड सोशल स्ट्रक्चर इन इंडियन हिस्ट्री,** सं. आर. ई. फ्राइकेन बर्ग, मैडिसन, 1969।

35.2.2 कृषि व्यवस्था का संकट

सतीश चन्द्र की महत्वपूर्ण पुस्तक के प्रकाशन के बाद अनेक विद्वानों ने साम्राज्य के राजनैतिक पतन के कारणों का पता लगाने के लिए इसकी कार्यपद्धति के विभिन्न पहलुओं पर विचार करना शुरू किया। अब कारणों की खोज व्यक्तियों और शासक की नीतियों के बजाए मुगल साम्राज्य के आधारभूत ढाँचे में की जाने लगी जिस पर मुगल साम्राज्य टिका हुआ था। इरफान हबीब ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक में साम्राज्य के पतन का गहराई में जाकर विश्लेषण किया। (**द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया,** नई दिल्ली, 1963) हबीब के अनुसार मुगलों द्वारा राजस्व की वसूली व्यवस्था में द्वेष अंतर्निहित थे। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए बड़ी से बड़ी सेना रखने की कोशिश की जाती थी और इस कारणवश राजस्व की दर भी ऊँची से ऊँची रखे जाने की नीति अपनाई जाती थी। दूसरी तरफ कुलीन अपनी जागीरों से ज्यादा से ज्यादा प्राप्त करना चाहते थे। उन्हें किसानों की बरबादी की कोई चिंता नहीं होती थी। उन्हें इस बात की भी परवाह नहीं होती थी कि क्षेत्र विशेष में अत्यधिक वसूली करने से कृषक बर्बाद हो सकते हैं और उस क्षेत्र से राजस्व वसूली की संभावना पूरी तरह समाप्त हो सकती है। कुलीनों का एक जागीर से दूसरी जागीर में स्थानांतरण होता रहता था, इस कारण वे कृषि संबंधी दूरगामी सुधारों में भी रुचि नहीं लेते थे। किसानों पर बोझ बढ़ता गया और उन्हें जीवनयापन की मूलभूत आवश्यकताओं से भी वंचित होना पड़ा। इस अतिशय शोषण की प्रतिक्रिया में किसानों के पास विरोध के अलावा और कोई चारा नहीं रहा। मध्यकालीन भारत में इस प्रकार के ग्रामीण विरोधों के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। कई स्थानों पर किसान खेत छोड़कर भाग गए। दूसरे गांवों या शहरों में चले जाने के कारण पूरा का पूरा गांव वीरान हो जाता था। कभी-कभी किसान राजस्व देने से मना कर देते थे और मुगल सत्ता के खिलाफ उठ खड़े होते थे। हबीब के अनुसार इन किसान विरोधों के कारण साम्राज्य के राजनैतिक और सामाजिक तंतु कमजोर हुए।

35.2.3 संकट का पुनर्परीक्षण

जे. एफ. रिचार्डस, एम. एन. पियरसन और पी. हार्डी भी साम्राज्य के पतन के कारणों में दक्खन और मराठों के मामलों में मुगलों के उलझने को एक महत्वपूर्ण स्थान देते थे। (**जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज़,** वर्ष 35, अंक 2, फरवरी 1976, पृ. 221-63)। पर साम्राज्य की प्रकृति के संबंध में अलीगढ़ के इतिहासकारों से उनका मतभेद है। पियरसन के अनुसार, मुगल शासन अप्रत्यक्ष था। लोगों का जीवन स्थानीय संबंधों और विधि विधाओं से संचालित होता था न कि राज्य नियंत्रण से। केवल कुलीनों की दृष्टि में ही मुगल साम्राज्य अन्य "आदिम जुड़ावों" से मुक्त था। ये कुलीन केवल संरक्षण के कारण ही साम्राज्य से जुड़े हुए थे और यह जुड़ाव सम्राट की "निरंतर सैन्य सफलता" पर आधारित होता था। पियरसन का मानना है कि मुगल राज्य में गैर व्यक्तिपरक नौकरशाही का अभाव था और यह स्थिति उसके लिए बहुत आशावादी नहीं थी। जैसे ही मुगल सेना की शक्ति कमजोर पड़ने लगी और साम्राज्य का विस्तार रुकने लगा साथ ही अधिक राजस्व प्रदान करने वाली जागीरों की कमी पड़ने लगी और मुगल साम्राज्य की व्यक्तिपरक नौकरशाही में दरार पड़ने लगी। निश्चित रूप से इससे मुगल व्यवस्था के लिए खतरा उत्पन्न हो गया।

1970 के आसपास जे. एफ. रिचार्ड्स ने मुगल पतन के इन सिद्धांतों पर नई दृष्टि से विचार किया जो **बेजागीरी** (जागीरों की अनुपस्थिति) को मुगल साम्राज्य के पतन का मूल कारण मानते हैं। गोलकुंडा के अभिलेखागार से प्राप्त अनेक दस्तावेजों के आधार पर उन्होंने इस मत का खंडन किया है कि दक्खन में जागीरों की कमी थी जिसके कारण **बेजागीरी** उत्पन्न हुई और मुगल साम्राज्य का पतन हुआ।

रिचर्डस के अनुसार जागीरदारी संकट प्रमुख रूप से प्रशासकीय और प्रबंधकीय स्तर का था। उनका मानना है कि औरंगजेब के शासन काल के उत्तरार्द्ध में दक्खन राज्यों के अधिग्रहण से साम्राज्य के राजस्व स्रोतों में बढ़ोत्तरी अवश्य हुई पर इससे कहीं ज्यादा कुलीनों की संख़्या बढ़ गई। कर्नाटक और मराठों के विरुद्ध निरंतर युद्ध के खर्च को पूरा करने के लिए औरंगजेब ने अधिकांश समृद्ध **जागीरों** को **खालसा** भूमि में परिणत कर दिया। इसके कारण **पायबाकी जागीरों** (वह भूमि जो जागीर में दिये जाने के लिये आरक्षित रखी जाती थी) की कमी हो गई। अत: यह संकट प्रशासनिक था और **बेजागीरी** के कारण उत्पन्न नहीं हुआ था। 1980 के आसपास सतीश चंद्र ने अपने शोध द्वारा **बेजागीरी** की समस्या को कुछ हद तक सुलझाया। उन्होंने कुछ नए स्रोतों और दस्तावेजों के आधार पर **बेजागीरी** और **जागीरदारी** में संकट के बीच स्पष्ट अंतर स्थापित किया। उनके मतानुसार शासकीय वर्ग के बढ़ने और जागीर से होने वाली आय में निरंतर गिरावट के कारण **जागीर** व्यवस्था का संकट पैदा नहीं हुआ। वस्तुत: सुचारु रूप से कार्य न कर पाने के कारण ही **जागीर** व्यवस्था में संकट पैदा हुआ। सतीश चन्द्र के अनुसार **जागीरदारी** के सुचारु रूप से कार्य न कर सकने की पृष्ठभूमि पर विचार करने के पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज को समझना आवश्यक है।

किसानों, जमींदारों और **मनसबदार/जागीरदार** के त्रिध्रुवीय संबंधों पर मुगल साम्राज्य का आधार टिका हुआ था। **मनसबदार/जागीरदार** द्वारा जमींदारों से भूराजस्व वसूल करने और किसानों या **रैयत** को खेती में संलग्न रखने में जागीर व्यवस्था की सफलता निहित थी। इस कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए **जागीरदार** के पास अच्छी फौज होनी चाहिए थी। इस फौज के रखरखाव के लिए उसमें अपनी **जागीर** से आवश्यक राजस्व और संसाधन जुटाने की क्षमता होनी चाहिए थी। **जागीरदार-जमींदार-किसान** के इस नाजुक संतुलन को अव्यवस्थित करने वाला कोई भी कारण साम्राज्य को पतन की ओर ले जा सकता था।

सतीश चन्द्र के अनुसार 17वीं शताब्दी में व्याप्त सामाजिक संघर्षों को मुगल अपने वर्गीय संबंधों के बृहद् ढाँचे के अंदर सुलझा न सके और इसके कारण वित्तीय संकट उत्पन्न हुआ और जागीर व्यवस्था में भी संकट बढ़ा क्योंकि ये एक दूसरे से जुड़े हुए थे। साम्राज्य के इतिहास के आरंभ में ही इस जागीर व्यवस्था में संकट के लक्षण उत्पन्न होने लगे थे। जहांगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में गंगा-यमुना दोआब के उपजाऊ क्षेत्र के बाहर साम्राज्य के विस्तार होने से यह संकट उभर कर सामने आ गया। शाहजहां के शासनकाल के अंत में जागीर भूमि के **जमा** (आकलित राजस्व) और **हासिल** (वास्तविक रूप में वसूला गया राजस्व) का अंतर सुस्पष्ट हो गया था। अगर कोई **मनसबदार** अपनी **जागीर** से एक वर्ष के राजस्व में से पांच महीने के बराबर का राजस्व वसूल कर लेता था तो वह भाग्यवान समझा जाता था। इसी वसूली के अनुसार उसे सवारों की संख्या भी घटानी पड़ती थी। दक्खन में यह वसूली और भी कम थी। वहां तीन महीने के बराबर का राजस्व वसूल हो पाता था और इसी तरह वहां के **जागीरदार** का प्रभाव भी कम था। जैसे ही **जागीरदार** की सैन्य शक्ति में कमी आई वैसे ही त्रिध्रुवीय संबंध छिन्न भिन्न हो गया और इस पर आधारित साम्राज्य भरभराकर गिर गया।

सतीश चंद्र के अनुसार **जागीरदारी** व्यवस्था का यह संकट कृषि और गैर कृषि अर्थव्यवस्था को तेजी से विकसित करके रोका जा सकता था। शासकों और कुलीनों के लिए व्यापार अतिरिक्त आय का साधन था। यहां हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि क्या कुलीन अपने संचित धन को नियमित रूप से व्यापार में निवेशित करते थे या कुछ अमीर लोग वैभव की जिंदगी बसर करने के लिए कभी कभी व्यापार कर लेते थे? मुगल कालीन व्यापारियों और राजनीति पर हुए अध्ययनों से यह ज्ञानकारी मिलती है कि अखिल भारतीय स्तर पर एक वर्ग के रूप में व्यापारी इतने शक्तिशाली नहीं थे कि वे राज्य सत्ता में हिस्सेदारी का दावा कर सकें। मुगल भारत में कमोवेश व्यापार और राजनीति अलग-अलग क्षेत्र रहे। कृषि क्षेत्र में हुआ विकास भी इससे बहुत भिन्न नहीं था। कई कारणों से राज्य ने छोटे किसानों की

अर्थव्यवस्था को ही प्रोत्साहन दिया। अत: **खुद काश्त** भूमि धारकों (समृद्ध किसानों) को भाड़े के मजदूरों की सहायता से खेती नहीं करने दी जाती थी तथा **पाही** किसानों (मध्य स्तर के किसान जिनके पास अपनी भूमि नहीं होती थी और ये अपने उत्पादन के औजारों के साथ एक गांव से दूसरे गांव जाते थे) को हटाकर अपनी खेती का विस्तार नहीं करने दिया गया। कुछ अमीर किसान सूद पर कर्ज दिया करते थे या गरीब किसानों की जमीन को बंधक रखकर उन्हें बटाईदार बना देते थे। अत: ये समृद्ध किसान बिचौलिए जमींदार या महाजन (अनाज व्यापारी तथा ऋणदाता) बनकर अपनी स्थिति सुधार सकते थे। इन कारणों से संभवत: कृषि अर्थव्यवस्था का विकास धीमा रहा और यह **जागीरदारी** संकट को टालने में असमर्थ रही। सतीश चन्द्र पुन: कहते हैं कि **जागीरदारी** संकट का मूलभूत आधार उस मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था में निहित है जिसके कारण कृषि का विकास सीमित रहा। इसी संरचना पर प्रशासनिक व्यवस्था आधारित थी और दोनों के बीच क्रिया प्रतिक्रिया होती रहती थी। इसके अलावा शासकीय वर्ग का बढ़ता आकार, कुलीनों की जीवन शैली में बढ़ता आडंबर परिणामस्वरूप उत्पादन के विस्तार के लिए उपलब्ध अधिशेष में कमी और इसके कारण धीमा आर्थिक विकास आदि इस संकट को विकट बनाने में पूरक तत्व का कार्य कर रहे थे। (सतीश चन्द्र, **मेडिवल इंडिया : सोसाइटी द जागीरदारी क्राइसिस एंड द विलेज,** दिल्ली, 1982)।

मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों पर विचार करते हुए यह भी कहा गया है कि परम्परागत रूप से गैर राजनैतिक समझा जाने वाला समुदाय अठारहवीं शताब्दी में राजनीति में हिस्सा लेने लगा। कैरन लियोनार्ड के अनुसार "देशी बैंकिंग संस्थाएँ मुगल राज्य के अपरिहार्य मित्र थे, तथा प्रमुख कुलीन जरूरत से ज्यादा इन संस्थाओं पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर थे।" 1650-1750 के काल में जब इन बैंकिंग संस्थाओं ने "अपने आर्थिक और राजनैतिक सहयोग की दिशा" क्षेत्रीय राजनीति और शासकों के साथ साथ बंगाल में इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की ओर मोड़ दी तो दिवालिएपन की स्थिति उत्पन्न हो गई, राजनैतिक संकटों का सिलसिला शुरू हो गया और साम्राज्य का पतन हो गया (कैरन लियोनार्ड, 'द "ग्रेट फर्म" थ्योरी ऑफ द डिक्लाइन ऑफ द मुगल अम्पायर', **कम्पेरेटिव स्टडीज इन सोसाइटी एंड हिस्ट्री,** वर्ष 21 अंक 2, अप्रैल 1979, पृ. 161-7)

मुगल राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं के वर्तमान उपलब्ध अध्ययन लियानार्ड के निष्कर्ष को कोई खास समर्थन प्रदान नहीं करते। फिलिप कैलकिन्स और एम. एन. पियर्सन ने क्रमश: बंगाल और गुजरात पर शोध करते हुए राजनीति में व्यापारियों के हिस्सा लेने के कुछ प्रमाण प्रस्तुत किए हैं (फिलिप सी कैलकिन्स, "द फॉर्मेशन ऑफ ए रीजनली ओरिएंटेड रूलिंग ग्रुप इन बंगाल", **जरनल ऑफ एशियन स्टडीज,** वर्ष 29 अंक 4, अगस्त 1970, एम. एन. पियर्सन, **मर्चेन्ट्स एंड रूलर्स इन गुजरात,** कैलिफोर्निया, 1976)। पर पियर्सन खुलकर यह नहीं कहता है कि मुगल वित्तीय व्यवस्था व्यापारियों के ऋण पर आधारित थी। कैलकिन्स ने एक खास काल और क्षेत्र तक अपने को सीमित रखकर अपनी सामान्य धारणा प्रतिपादित की थी। लियोनार्ड ने भी कैलकिन्स और पियर्सन द्वारा उपयोग में लाए गए स्रोतों का ही इस्तेमाल किया था। लियोनार्ड का निष्कर्ष बहुत स्वीकार्य नहीं लगता क्योंकि इस संदर्भ में कोई नये प्रमाण नहीं मिलते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) मुगल साम्राज्य के पतन के कारण के रूप में जागीरदारी संकट का आधारभूत तर्क क्या है?

....

....

....

....

....

2) "कृषि व्यवस्था के संकट" पर चार पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

3) जागीरदारी संकट के संदर्भ में जे. एफ. रिचार्ड्स के मुख्य तर्क का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

35.3 क्षेत्र-केंद्रित दृष्टिकोण

मुजफ्फर आलम और चेतन सिंह ने अपनी कृतियों में मुगल साम्राज्य के पतन की व्याख्या करते हुए क्षेत्र केंद्रित दृष्टिकोण अपनाया है। (एम. आलम, **द क्राइसिस ऑफ अम्पायर इन मुगल नार्थ इंडिया, अवध एंड द पंजाब 1707-1748,** नई दिल्ली 1986; चेतन सिंह, **रीजन एंड एम्पायर, पंजाब इन द सेवेंटींथ सेंचुरी,** नई दिल्ली 1991)। मुजफ्फर आलम ने मुगल काल के पंजाब और अवध के सूबों में हुई गतिविधियों का तुलनात्मक अध्ययन किया है जबकि चेतन सिंह ने 17वीं शताब्दी के पंजाब के क्षेत्रीय इतिहास का गहराई से अध्ययन किया है।

ये अध्ययन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इनमें मुगल साम्राज्य की प्रकृति और इसके लगातार कमजोर होते जाने की प्रक्रिया और अंततः 17वीं के अन्त और आरंभिक 18वीं शताब्दी में इसके पतन पर प्रकाश डाला गया है।

35.3.1 केंद्र-क्षेत्र संबंध

आलम ने **सूबा** अवध को मुगल राज्य का क्षेत्रीय प्रारूप मानकर मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों की तलाश करने की कोशिश की है। आलम बताते हैं कि मुगल साम्राज्य विभिन्न स्तरों पर संघर्षरत समुदायों और विभिन्न देशी सामाजिक राजनैतिक व्यवस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करने वाली एजेंसी के रूप में कार्य करता था। एक अर्थ में साम्राज्य का आधार निषेधात्मक था, इसकी शक्ति स्थानीय समुदायों की अपने सीमित क्षेत्रों से बाहर बढ़कर स्वयं को संगठित करने की असमर्थता से प्रभावित होती थी। मुगलकालीन भारत में हुए राजनैतिक एकीकरण में एक हद तक कई दोष अंतर्निहित थे विभिन्न सामाजिक समुदायों का नेतृत्व करने वाले स्थानीय नेता अपने स्वार्थों और राजनैतिक समीकरण के लिए काफी हद तक कुछ शर्तों के साथ केंद्र से जुड़े हुए थे। ये स्थानीय नेता यह जानते थे कि वे अपने बल पर कुछ नहीं कर सकते थे। इसी कारण से कुलीन अपनी शक्ति और पद के लिए सीधे सम्राट से जुड़े हुए थे और स्वयं सम्राट सीधे उनकी नियुक्ति करता था। उनके पास कोई अनुवांशिक सम्पदा और अधिकार नहीं थे और वे अपने उत्तराधिकारियों के लिए भी कुछ छोड़ने की स्थिति में नहीं थे। साम्राज्य उनके संसाधनों की जांच और नियमन करता था। वे एक प्रकार से मुगल सम्राट के प्रतिनिधि होते थे। **जागीर** स्थानांतरण की नीति का मुख्य उद्देश्य उन पर नियंत्रण रखना और साम्राज्यी संगठन को मजबूत करना था। पर इससे कुलीनों को असुविधा हुआ करती थी और वे इसका विरोध करते थे। 17वीं शताब्दी

के दौरान मुगल साम्राज्य के कई क्षेत्रों में इस व्यवस्था का भली प्रकार कार्यान्वयन नहीं हो सका। स्थानीय संभ्रांत (जमींदार) और कुलीन, ग्राम और कस्बा आधारित **मदद ए माश** प्राप्तकर्ता (ऐसे विद्वजन जिन्हें मुगल सम्राटों द्वारा राजस्व मुक्त भूमि प्रदान की जाती थी) और विभिन्न क्षेत्रों और स्थानीय समुदायों से बड़ी संख्या में आए निचले स्तर के अधिकारी साम्राज्य के ढाँचे में एक दूसरे से गहरे रूप में जुड़े हुए थे। **मदद ए माश** भूमि विभिन्न जमींदारी क्षेत्रों में फैली हुई थी। इसका उद्देश्य साम्राज्य के दूर दराज के ग्रामीण इलाकों तक साम्राज्य के लिए कुछ प्रभाव क्षेत्रों का निर्माण करना था। सम्राटों का यह मानना था कि **मदद ए माश** प्राप्तकर्ता विद्रोही जमींदारों की शक्ति पर नियंत्रण रखने में सहायता कर सकेंगे और इस प्रकार साम्राज्य की सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था में संतुलन बना रहेगा।

आलम का मानना है कि आरंभिक 18वीं शताब्दी में मुगल व्यवस्था ज़मींदारों, **जागीरदारों, मदद ए माश** प्राप्तकर्ताओं और अवध के **शेखजादों** जैसे स्थानीय प्रभावशाली तत्वों पर निगाह और नियंत्रण न रख सकी और परिणामस्वरूप मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। 18वीं शताब्दी के आरंभ में अपना अस्तित्व स्थापित करने के लिए कुलीनों में जमींदारों से स्वतंत्र राजनैतिक गठबंधन करने की प्रवृत्ति बढ़ी। इसके अलावा मुगल सत्ता के विभिन्न भागीदार (जमींदार, **मदद ए माश** प्राप्तकर्ता आदि) एक दूसरे के अधिकारों और इलाकों को हड़पने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार की घटनाएँ बिल्कुल नई नहीं थीं परंतु साम्राज्य के उत्कर्ष की अवधि में यह नियंत्रण में रहे। इन्हें नियंत्रण में रखने के लिए कभी सैन्य बल की सहायता ली जाती थी और कभी कभी एक समुदाय के बीच दूसरे समुदाय को बसा दिया जाता था (उदाहरणस्वरूप अवध की जमींदारों के आस-पास **मदद ए माश** प्राप्तकर्ताओं को राजस्व का आवंटन)।

आलम मुख्य रूप से यह विश्लेषित करना चाहते हैं कि 18वीं शताब्दी के आरंभ में सामाजिक और राजनैतिक संतुलन किस प्रकार बिगड़ गया? दूसरे शब्दों में किन कारणों से 18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। उनका मानना है कि 17वीं शताब्दी के अन्त और 18वीं शताब्दी के आरंभ में अवध और पंजाब में निश्चित आर्थिक विकास देखने को मिलता है। आलम का अध्ययन सतीश चंद्र और अन्य विद्वानों के अठाहरवीं शताब्दी के अंत के वित्तीय संकट के विचार के बिल्कुल विपरीत दृश्य उपस्थित करता है। मुगल सत्ता से जुड़े और साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने वाले सामाजिक समुदाय इन क्षेत्रों में हुई आर्थिक प्रगति से लाभ उठाने लगे। उनमें से कई लोगों ने इसकी सहायता से अपनी ताकत बढ़ाई और दूसरों के अधिकारों और विशेषाधिकारों को हड़पने का प्रयत्न करने लगे। इन गतिविधियों से साम्राज्य का राजनैतिक ढाँचा ढहने लगा। निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए मुजफ्फर आलम कहते है कि अवध और पंजाब में हुए एक प्रकार के राजनैतिक रूपांतरण और एक नई सूबेदारी के तत्वों के उदय और विन्यास में मुगल साम्राज्य के पतन के बीज मौजूद थे। वस्तुत: यह उस पतन की अभिव्यक्तियाँ थीं। इन दोनों प्रांतों में स्वतंत्र क्षेत्रीय इकाइयों के रूप में उदय होने के सभी तत्व मौजूद थे। पर पंजाब में इससे अव्यवस्था फैली पर अवध में एक स्थाई शासन की नींव रखी गई।

35.3.2 क्षेत्रीय राजनीति का स्वरूप

मुगल साम्राज्य के पतन की व्याख्या करने के लिए मुजफ्फर आलम ने 18वीं शताब्दी की क्षेत्रीय गतिविधियों पर नजर डाली। यही दृष्टिकोण चेतन सिंह ने भी अपनाया। उनकी पुस्तक **रीजन एंड एम्पायर** में मुगलकालीन उत्तर भारत के क्षेत्रीय इतिहास पर एक नई दृष्टि डाली गई है। इसमें मुगल राजनीति के साथ-साथ समग्र पश्चिम एशिया में आए व्यापक राजनैतिक बदलाव के संदर्भ में मुगलकालीन पंजाब सूबा के इतिहास का अध्ययन किया गया है। उनका मानना है कि निस्संदेह मुगलकालीन प्रशासनिक ढाँचा क्षेत्रों को मुगल प्रशासन से जोड़ता था पर इस प्रकार के परम्परागत एकीकरण की अपनी कुछ समस्याएँ थीं। स्थानीय समाज और राजनीति में कई प्रकार के तनाव होते थे और इससे निपटने के लिए प्रशासनिक व्यवस्था द्वारा मुगल सरकारी व्यवस्था के बनेबनाए प्रशासनिक विभाजनों और उपविभाजनों का अतिक्रमण भी कर लिया जाता था। आम प्रशासन और राजस्व प्रशासन दोनों क्षेत्रों में व्यावहारिक जरूरतों के कारण ऐसा करना पड़ता था। स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों की कार्यपद्धति तथा राजस्व व्यवस्था पर स्थानीयता का असर होता था। समय बीतने के साथ-साथ राजस्व प्रशासन में कुछ प्रथाएँ और रिवाज मान्य हो गए और उनसे नियम और कानून विकसित हुए जिन्होंने मुगल साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान किया।

चेतन सिंह के अनुसार 17वीं शताब्दी के अंत में सिंधु नदी में गाद जमा होने से पंजाब का जल मार्ग बुरी तरह बाधित हुआ। इससे पंजाब की वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा असर पड़ा। समकालीन तुर्की में राजनैतिक उथलपुथल, इरान के शाह का कांधार पर कब्जा और मुगलों द्वारा इसे प्राप्त करने के प्रयत्न के कारण थल मार्ग भी अवरुद्ध हो गया। इसी समय उत्तर-पश्चिम पंजाब में यूसूफजई विद्रोह (1667) और आफ़रीदी विद्रोह (1678) भी हुआ। सिंह का मानना है कि इन राजनैतिक गड़बड़ियों का असर पंजाब के समाज और अर्थव्यवस्था पर पड़ा। इनसे व्यापार बाधित हुआ और धीरे-धीरे वाणिज्यिक कृषि पर आधारित पंजाब की अर्थव्यवस्था नष्ट हो गई।

पंजाब में सामाजिक आर्थिक ढाँचे के कमजोर पड़ते ही सामाजिक विक्षोभ पैदा होने लगा। हालांकि सिंह का मानना है कि पंजाब में हर जगह आर्थिक विकास एक समान नहीं था अत: आर्थिक दृष्टि से विकसित और सम्पन्न इलाकों में ही आंदोलन हुए क्योंकि व्यापार के ह्रास से इन्हीं इलाकों पर सीधा प्रभाव पड़ा था। इन्हीं इलाकों में सिख विद्रोह अधिक हुए। अत: उनका निष्कर्ष है कि पंजाब में उत्पन्न सामाजिक विक्षोभ और अंतत: साम्राज्य से उसका संबंध विच्छेद एक लंबी प्रक्रिया का परिणाम था। 18वीं शताब्दी के पहले से, जब मुगल साम्राज्य राजनैतिक रूप से कमजोर होना शुरू नहीं हुआ था, ये प्रक्रियाएँ धीरे धीरे एक निश्चित गति से अग्रसर हो रही थीं।

यहीं पर साम्राज्य के संकट के जटिल प्रश्न को सिंह के अध्ययन ने एक नया आयाम दिया। मुजफ्फर आलम मुगल प्रांत अवध और पंजाब का मुगल साम्राज्य से संबंध विच्छेद की प्रक्रिया का आरंभ 18वीं शताब्दी की शुरुआत से मानते हैं जबकि सिंह का मानना है कि यह प्रक्रिया साम्राज्य के उत्कर्ष काल में भी चल रही थी। इस प्रकार पंजाब के क्षेत्रीय इतिहास के दृष्टिकोण से साम्राज्य के पतन को देखने पर अलग तस्वीर उभर कर आती है। विभिन्न सूबों ने केवल विभिन्न कारणों से ही साम्राज्य से अपने को अलग नहीं कर लिया बल्कि अक्सर यह संबंध विच्छेद राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों से उत्पन्न होता था जिस पर मुगल साम्राज्य का कोई नियंत्रण नहीं था।

35.3.3 अवलोकन

मुगल साम्राज्य के विभिन्न प्रांतों और क्षेत्रों में व्याप्त समस्याओं की एक व्याख्या प्रस्तुत करना कठिन है। इन्हीं कारणों से मुगल साम्राज्य के पतन का कोई एक कारण नहीं बताया जा सकता है। मुगल साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में मुगल साम्राज्य के पतन संबंधी किसी एक दृष्टिकोण को ग्रहण करना कठिन है। मुगल साम्राज्य केंद्र और क्षेत्र के आपसी संबंध पर टिका हुआ था। 18वीं शताब्दी के आरंभ में यह समझौता टूटने लगा। साम्राज्य के कई हिस्से अपने विकास के मार्ग स्वयं प्रशस्त करने लगे। अठारहवीं शताब्दी के क्षेत्रीय इतिहास से पता चलता है कि वर्तमान सामाजिक ढाँचे के अंदर ही विकास की संभावनाओं की खोज शुरू हो गई थी। स्पष्ट रूप से मुगल साम्राज्य के पतन का क्षेत्रीय इतिहास का दृष्टिकोण सम्पूर्ण भारत में मुगल साम्राज्य के पतन का कोई एक कारण नहीं मानता है। मुगल साम्राज्य केंद्र और क्षेत्रीय इलाकों के समझौते पर आधारित था। ये क्षेत्र मुगल साम्राज्य से केवल प्रशासनिक तौर पर नहीं जुड़े हुए थे। विजेता और विजित के बीच आर्थिक और सांस्कृतिक सम्मिलन भी हुआ था। इसी आर्थिक और सांस्कृतिक सहयोग पर मुगल ढाँचा आधारित था।

विभिन्न क्षेत्र मुगल साम्राज्य से इन कई बंधनों से जुड़े हुए थे। 17वीं शताब्दी के दौरान मुगलकालीन भारत में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन आने से इस गठबंधन पर प्रभाव पड़ना अपरिहार्य था। विभिन्न क्षेत्रों पर विभिन्न तरीकों से प्रभाव पड़ा। कुछ क्षेत्रों ने अपने संबंध मुगल केंद्रीय सत्ता से तोड़ लिए जबकि अन्य ने यह बनाए रखे। यह बात तर्क संगत प्रतीत होती है कि मुगल साम्राज्य के विकेन्द्रीकरण के समय विभिन्न क्षेत्रीय शक्तियों ने केंद्र से पृथक होने के अलग-अलग तरीके अपनाए। निश्चित रूप से साम्राज्य के पतन की मुगल केंद्रित विचारधारा के विपरीत, मुगल साम्राज्य का ह्रास एक अधिक जटिल प्रक्रिया थी।

बोध प्रश्न 2

1) मुगल साम्राज्य के पतन के विषय में मुजफ्फर आलम के विचारों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में सिन्धु नदी के जल मार्ग के बन्द होने का पंजाब की आर्थिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा?

....

....

....

....

....

35.4 सारांश

प्रारंभ में यह मत स्वीकार्य था कि मुगल साम्राज्य के पतन में प्रशासनिक अव्यवस्था एक प्रमुख कारण था। इस अव्यवस्था ने **जागीर** व्यवस्था में संकट को जन्म दिया जो अंतत: क्षेत्रीय शक्तियों के उदय में सहायक हुआ। बाद में आर्थिक ढाँचे के अध्ययन से यह मत सामने आया कि साम्राज्य कृषि व्यवस्था के संकट की ओर बढ़ रहा था और इससे आर्थिक ढाँचा प्रभावित हो रहा था। इससे जाटों, सतनामियों और सिखों का विद्रोह सामने आया जिसने साम्राज्य की नींव हिला दी। पर मुगल साम्राज्य के पतन के संदर्भ में कोई ऐसी व्याख्या नहीं विकसित की जा सकी है जो सभी प्रांतों और क्षेत्रों में लागू हो सके। अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में संभवत: मुगल व्यवस्था को संभालकर रखने वाला संतुलन बिगड़ गया। इसके बाद इस व्यवस्था के विभिन्न अंगों का पुनर्गठन होने की प्रक्रिया शुरू हो गई जिसके परिणामस्वरूप साम्राज्य का अंत और क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ।

35.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) **जागीरों** की संख्या में कमी होने के कारण नये कुलीन वर्ग के बीच इन्हें आवंटित करने की समस्या पैदा हो गई। विवरण के लिए 35.2.1

2) देखिए उपभाग 35.2.2

3) देखिए उपभाग 35.2.3

बोध प्रश्न 2

1) उनका मानना था कि राज्य के विभिन्न सुविधाभोगियों मसलन **जमींदार जागीदार, शेखजादा** आदि के आपसी संतुलन और नियंत्रण को बनाए रखने में मुगल राज्य असक्षम हो गया था। इसी कारण से मुगल साम्राज्य का पतन हुआ। विस्तार के लिए उपभाग 35.3.1 देखिए।

2) देखिए उपभाग 35.3.2